युवमानस

नवजन मन की गाथा

स्त्री विमर्श विशेषांक

जुलाई - सितंबर, 2023

हिन्दी विभाग

जमशेदपुर को-ऑपरेटिव कॉलेज

के छात्र समूह की त्रैमासिक दीवार पत्रिका

स्त्री विमर्श विशेषांक: जुलाई-सितंबर, 2023

संपादक: संजय सोलोमन सह-संपादक: प्रियंका कुमारी

पृष्ठ सज्जा: बबीता, नंदिनी, पूनम एवं अन्य

संपादकीय

"इतिहास की सबसे बड़ी धोखाधड़ी"

प्रिय पाठकों,

स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक होते हैं। दोनों के साथ रहने से ही मानव जाति का विकास संभव है। किन्तु हजारों वर्षों से पुरुषों ने समाज को अपने नियंत्रण में कर रखा है। वर्षों से धर्म और परंपरा का हवाला देकर स्त्रियों का शोषण किया जा रहा है। आज शिक्षा और चेतना के स्तर में विकास के साथ इस विषय पर विमर्श होने लगा है। युवमानस का यह अंक भी स्त्री विमर्श पर ही केंद्रित है।

साथियों, पृथ्वी पर मौजूद अन्य जीवों की तरह ही मनुष्यों में भी दो भेद पाए जाते हैं- नर और मादा। यह भेद प्राकृतिक है जो नस्ल को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक है। आरंभ में जब मनुष्य कबिलाई समाज में रहता था, तब शायद ही स्त्री-पुरुष में कोई भेद था। संभवतः संघर्षशील वातावरण में कबीलों के पास जीवित रहने का सर्वोत्तम संभव विकल्प यही रहा हो कि पुरुष प्रतिद्वंदियों का सामना करें और स्तनधारी होने के कारण महिलायें नई नस्ल को जन्म दें ताकि उन्हें संख्या का लाभ मिल सके। यह श्रम का विभाजन था किन्तु समयान्तर में यह भूमिका जड़ होते चली गई। महिलायें घर तक ही सीमित हो गई और बाहर का कार्य पुरुष ही करने लगे। कृषि के साथ ही अधिशेश मूल्य भी प्राप्त होने लगा। क्योंकि कृषि के उपकरण पुरुषों के पास थे, इस अधिशेश मूल्य पर वे अपना अधिकार समझने लगा। इस अधिकार को बनाए रखने के लिए वे माहिलाओं के अधिकारों का हनन करने लगे। इस तरह निजी संपत्ति के उदय के साथ पितृसत्ता भी अस्तित्व में आया।

भारतीय उपमहाद्वीप के संदर्भ हमें लिखित दस्तावेज ऋग्वैदिक युग के आरंभ (1500 ई पू) से मिलता है। इस युग में गौ पालन और कृषि के रूप में निजी संपत्ति की धारणा तो मिलती है किन्तु सहकारिता और अस्थिरता के कारण पितृसत्ता उतना प्रबल नहीं था। महिलाओं के कुछ अधिकार थें। जैसे-जैसे स्थिरता आने लगी, पुरुषों का वर्चस्व बढ़ने लगा। महिलाओं के अधिकार छिन गए और उन्हें शिक्षा आदि से वंचित कर दिया गया। धर्म और परंपरा के नाम पर उन्हें मुख्य धारा से काट कर पुरुषों के आधीन कर दिया गया ताकि उत्पादन के साधनों पर पुरुषों की ही दावेदारी बनी रहे। सामंती समाज महिलाओं को हाशिये पर ले आया। उनके अस्तित्व को ही झुठला दिया गया। उनसे किसी वस्तु सा व्यवहार किया जाने लगा। इसी से सती, बाल विवाह, बेमेल विवाह जैसी कुप्रथाएं शुरू हुई। पूरे सामंती युग के दौरान महिलाओं की यही दयनीय स्थिति बनी रही। अंग्रेजों के साथ प्रेस और शिक्षण संस्थानों का भी भारत में आगमन होता है। कुछ समाज सुधारकों को ज्ञात होता है कि जहां की आधी आबादी शोषित और वंचित है, वह समाज अपाहिज है। यहीं से स्त्री शिक्षा पर जोर दिया जाता है। कुप्रथाओं के विरुद्ध संघर्ष होता है। इसे अंग्रेजों का समर्थन मिलता है। कारण है कि औपनिवेशिक और पूंजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों की भारी मांग होती है और महिलाएँ सबसे सस्ती श्रमिक हैं।

साथियों, हजारों वर्ष पहले जो श्रम विभाजन हुआ था, वह आज तक औरतों की घरेलू दासता का कारण बना हुआ है। आज बाहर नौकरी करने वाली महिलाओं को घर आकर भी नौकरी करनी पड़ती है। क्योंकि सदियों से औरतों के घरेलू काम को उनका कर्तव्य बना दिया गया है। उनके घरेलू श्रम को श्रम नहीं माना जाता। यह इतिहास की सबसे बड़ी धोखाधड़ी है। नवजन को चाहिए कि वे इस श्रम की लूट के विरुद्ध आवाज उठायें और एक भेद रहित समाज का निर्माण करें।

- संजय सोलोमन (स्नातक, सेमेस्टर-6)

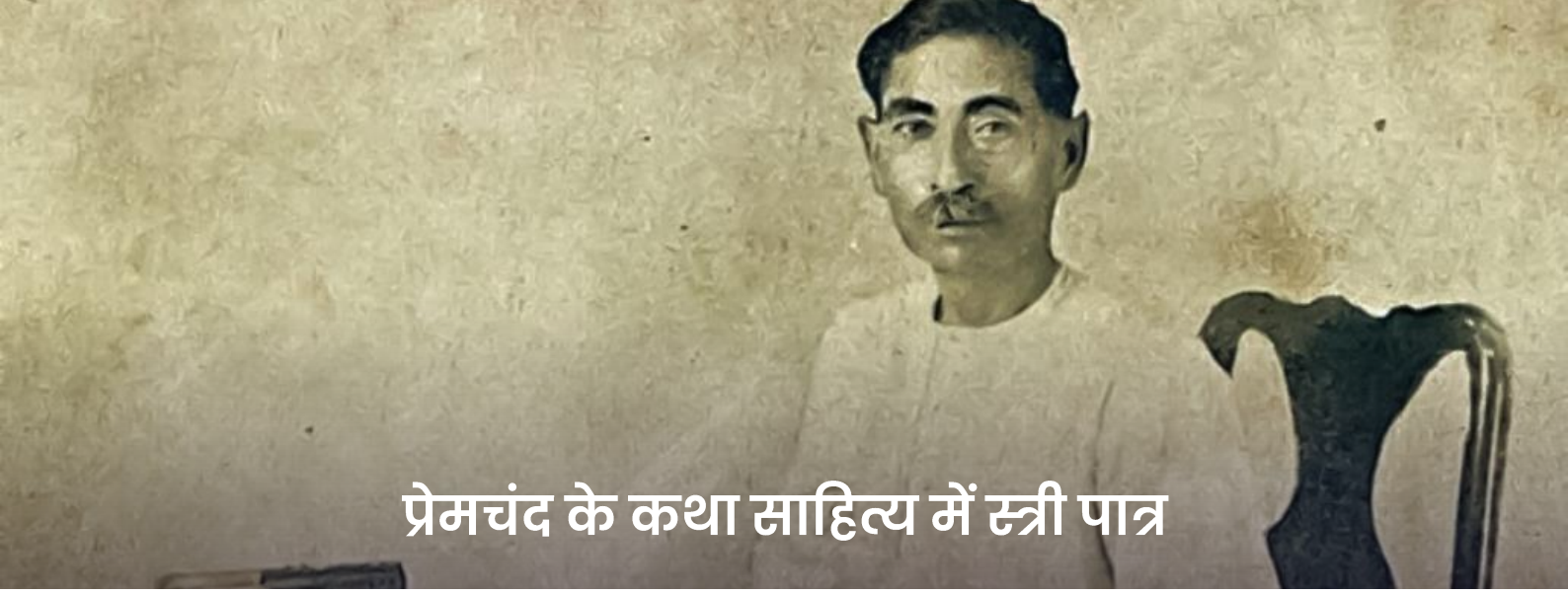

प्रेमचंद के कथा साहित्य में स्त्री पात्र

मुंशी प्रेमचंद हिन्दी कथा साहित्य में एक बड़ा नाम है। प्रेमचंद ने अपने विचारों और लेखन-कला के माध्यम से हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। साहित्य, जो उस समय लोक मनोरंजन में जुटा हुआ था, उन्होंने उसे लोक हित के काम में लगाया। प्रेमचंद ने जाति व्यवस्था, धार्मिक आडंबर, मजदूरों और किसानों की समस्या जैसे अनेक विषयों पर केंद्रित रचनाएँ की। किन्तु जिस विषय को उन्होंने सर्वाधिक प्रमुखता से उकेरा वह है स्त्री संबंधित समस्या।

प्रेमचंद ने उस दौर में लेखन शुरू किया जब समाज सुधार का काम शुरू तो हुआ था किन्तु स्त्री विमर्श निम्न स्तर पर था। स्त्री शोषण का विरोध तो हो रहा था पर स्त्री मुक्ति और अस्मिता पर विचार नहीं। आर्यसमज से प्रभावित प्रेमचंद की आरंभिक रचनाओं में यह देखा जा सकता है। उनकी कहानी "स्वर्ग की देवी", "सती" आदि में लीला और मूलिया जैसे पात्र हैं, जो आदर्शवादी स्त्री हैं और भारतीय परंपराओं का पालन करती हैं। शाप, मर्यादा की वेदी जैसी कहानियों में भी प्रेमचंद ने स्त्री के त्याग और पवित्रता का महिमामंडन किया है। वहीं "बड़े घर की बेटी" में वे आनंदी के माध्यम से संयुक्त परिवार का बखान करते हैं और परिवार की इज्जत स्त्री के हाथ में रख देते हैं।

समयान्तर में प्रेमचंद ने आदर्श और परंपरा के नाम पर उपेक्षितों पर हो रहे शोषण को जाना और यथार्थवादी होते चले गए। इसके साथ-साथ उनके स्त्री पत्रों का भी यथार्थवादी चित्रण होने लगा। "कायाकल्प" की स्त्री पात्र पतिव्रतता पर प्रश्न करती और उसे अपने अपमान का कारण बताती है। "मंगलसूत्र" में पुष्पा स्वयं को पति पर आश्रित कहलाने का विरोध करती है और उसकी आज्ञा मानने से मना कर देती है। वह दोनों को एक दूसरे पर आश्रित बताती है। "सेवसादन" की सुमन सामंती समाज द्वारा शोषित स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो मजबूरन वेश्यावृत्ति करने लगती है। प्रेमचंद ने दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, पर्दा-प्रथा जैसी कई समस्याएं अपने स्त्री पत्रों के माध्यम से उकेरा है। "निर्मला" की मुख्य पात्र तत्कालीन समाज की एक औसत महिला की दशा को दर्शाती है, जो आजीवन शारीरिक और मानसिक शोषण सहती रहती है।

आदर्शवादी हो या यथार्थवादी, प्रेमचंद के साहित्य में स्त्री पत्रों को सहायक भूमिका नहीं दी गई बल्कि उन्हें प्रमुखता से उकेरा गया है। ये मुश्किलों का सामना करती हैं, अधिकारों के लिए लड़ती हैं, व्यवस्था से सवाल करती हैं और स्त्री पाठकों को प्रेरित भी करती हैं। प्रेमचंद ने अपने साहित्य द्वारा पाठकों को स्त्री की दशा और दिशा पर विमर्श करने को मजबूर किया है।

– प्रियंका कुमारी (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 4)

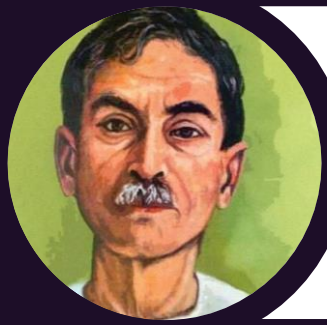

"पुरुष में थोड़ी-सी पशुता होती है, जिसे वह इरादा करके भी हटा नहीं सकता। वही पशुता उसे पुरुष बनाती है। विकास के क्रम में वह स्त्री से पीछे है। जिस दिन वह पूर्ण विकास को पहुँचेगा, वह भी स्त्री हो जाएगा।"

- प्रेमचंद

मीरा : मध्यकालीन भारत में स्त्री अस्मिता की आवाज़

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल में एक देशव्यापी भक्ति आंदोलन देखने मिलता है। डॉ रामविलास शर्मा इसे सामंत-विरोधी लोक जागरण का काल कहते हैं। इस काल के कवियों ने सामंती सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध एक जन-आंदोलन का प्रतिनिधित्व किया। इन कवियों ने जाति व्यवस्था, धार्मिक पाखंड जैसे कई अन्य आडंबरों का विरोध तो किया किन्तु स्त्रियों के संबंध में ये अपने समाज से आगे नहीं निकाल पाएं। कई कवियों ने तो नारी की निंदा भी की। ऐसे में मीरा का नाम उभर कर आता है।

मीरा एक विद्रोही कवियित्री थीं, जो मध्यकालीन भारत में स्त्री अस्मिता और स्वतंत्रता की आवाज़ बनी। उन्होंने अपनी वैचारिक मान्यताओं के लिए तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं को नकार दिया। मीरा कृष्ण भक्त थीं किन्तु उनकी भक्ति सूफियों की प्रेम भाव की भक्ति से प्रभावित थी। यही कारण है कि वह कृष्ण से प्रियसी की तरह प्रेम करने लगी थीं। प्रेम में उन्होंने एक स्त्री पर पड़ी सभी बंधनों को तोड़ दिया। तत्कालीन कुप्रथा के विरुद्ध पति के मरने पर मीरा ने सती होना स्वीकार नहीं किया। ये बातें समाज को पसंद नहीं आई और मीरा को कई यतनाएं दी गई। वे कहती हैं, "सास लड़े मेरी नन्द खिजावै, राणा रह्या रिसाय। पहरे भी राख्यो चैकी बिठार्यो, तालो दियो जड़ाय।" जब इन सब का मीरा पर कोई असर न हुआ तो राणा ने उन्हें विष दे कर मारने का भी प्रयास किया। मीरा सब कुछ सह कर चुप रहने वाली नहीं थी। अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता के लिए वह सदैव मुखर रहीं। "लोकलाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी। अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।" मीरा ने राजपाठ त्याग दिया। उन्होंने वैभव विलास के स्थान पर अपनी स्वतंत्रता को चुना। वे साधु संतों से साथ रहने लगीं। किन्तु यहाँ भी उन्हें अपनी जगह बनाने के लिए अत्यंत संघर्ष करना पड़ा। स्त्री होने के कारण पुरुष भक्त उनकी उपेक्षा करते रहे। इन सबका सामना कर, इनसे लड़कर मीरा ने अपना परचम लहराया।

मध्यकालीन पितृसत्तात्मक समाज में मीरा ने महिलाओं को अपनी अस्मिता और स्वतंत्रता के लिए लड़ने को प्रेरित किया। उन्होंने समाज को स्पष्ट संदेश दिया की स्त्री पिता, पति और पुत्र की संपत्ति नहीं है। एक स्त्री पर केवल स्वयं उस स्त्री का अधिकार है। इस तरह भारत में स्त्री विमर्श कि आरंभिक झलकियाँ हमें मीरा के काव्य में देखने को मिलता है।

– रोहन दुबे (स्नातक, सेमेस्टर 6)

"जब कोई पुरुष महिलाओं की शक्ति को नकारता है, तब वह अपने अवचेतन को नकार रहा होता है।"

- अमृता प्रीतम

बाज़ारवाद की शिकार आदिवासी अंचल की लड़कियाँ

नदियों, पहाड़ों, जंगलों से घिरे और खनिज पदार्थों के धनी झारखंड और छत्तीसगढ़ आदिवासी बहुल राज्य हैं। इन्हें अलग राज्य बनाने के पीछे उद्देश्य था कि यहाँ के मूलनिवासियों का कल्याण और आवश्यक विकास हो। आज विभाजन के इतने वर्षों बाद भी स्थिति इसके विपरीत है। ज़मीन की लूट, गावं में उद्योगों का प्रवेश, विस्थापन, प्रदूषण जैसे कई समस्याओं से जूझ रहे हैं यहाँ के आदिवासी। किन्तु आज जो सबसे बड़ी समस्या बन कर सामने आई है वो है- आदिवासी लड़कियों की तस्करी।

पिछले कुछ वर्षों में झारखंड और छतीसगढ़ में मानव तस्करी के अपराध तेजी से बढ़े हैं। यहाँ के आदिवासी बहुल गाँवो से भारी संख्या में लड़कियों की तस्करी की जा रही है। विभिन्न एजेंसियों द्वारा इन्हें नौकरी के नाम पर ले जा कर दूसरे राज्यों में बेच दिया जाता है। इन एजेंसियों का जाल पूरे भारत में फैला है, इनमें दिल्ली, पंजाब, हरियाणा, कर्नाटक आदि प्रमुख हैं। इन्हें बंधुआ मज़दूरी, घरेलू नौकरानी, देह व्यपार, अंग व्यपार समेत अन्य कई जबरन और गैर-कानूनी कामों के लिए खरीद बेचा जाता है। इंसानों का ऐसा अमानवीय व्यवहार देख कर साहिर लुधियानवी का शेर याद आता है, "हम जो इंसानो की तहज़ीब लिये फिरते हैं, हम सा वहशी कोई जंगल के दरिन्दों में नहीं।"

केन्द्रीय गृह मंत्रालय के अनुसार 2019 से 2021 तक 13 लाख लड़कियाँ लापता है, जिसमें से 3 लाख नाबालिग बच्चियाँ हैं। ये तो केवल वो आँकड़े हैं जिनकी रिपोर्ट हुई है। ऐसी और कितनी लड़कियाँ होंगी जिनके लापता होने की कभी रिर्पोट दर्ज नहीं हुई? ऐसी कितनी ही लड़कियाँ हैं जो नौकरी के लिए घर से निकली और कभी वापस नहीं आई। यह हमारे देश के लिए एक शर्म की बात है। इस पर गंभीर विमर्श और तस्करों कर कड़ी कारवाई होनी चाहिए। पर अफसोस इस विषय पर न तो नेताओं की दिलचस्पी है, न मीडिया की।

महिलाओं ने हजारों वर्षों से शोषण सहा है। इस समाज ने उन्हें बस भोग्य वस्तु ही समझा है। कभी दहेज के लिए शोषण तो कभी भ्रूण में ही हत्या। कभी तस्करी तो कभी बलात्कार। पर अब वक़्त है कि आदिवासी लड़कियाँ फूलो-झानो को अपना आदर्श बनाएं और उनपर हो रहे शोषण के विरुद्ध लड़ें। क्योंकि जैसा विलियम गेन्डिस ने कहा है, "न्याय तुम्हें अगली दुनिया में मिलेगा, इस दुनिया में तुम्हें सिर्फ कानून मिलेगा।"

– बबीता माण्डी (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 2)

"पूंजीवाद और पितृसत्ता का दोहरा रिश्ता रहा है क्योंकि पूंजीवाद को सस्ते श्रम की ज़रूरत है और महिलाएं सबसे सस्ती श्रमिक हैं।"

- कमला भसीन

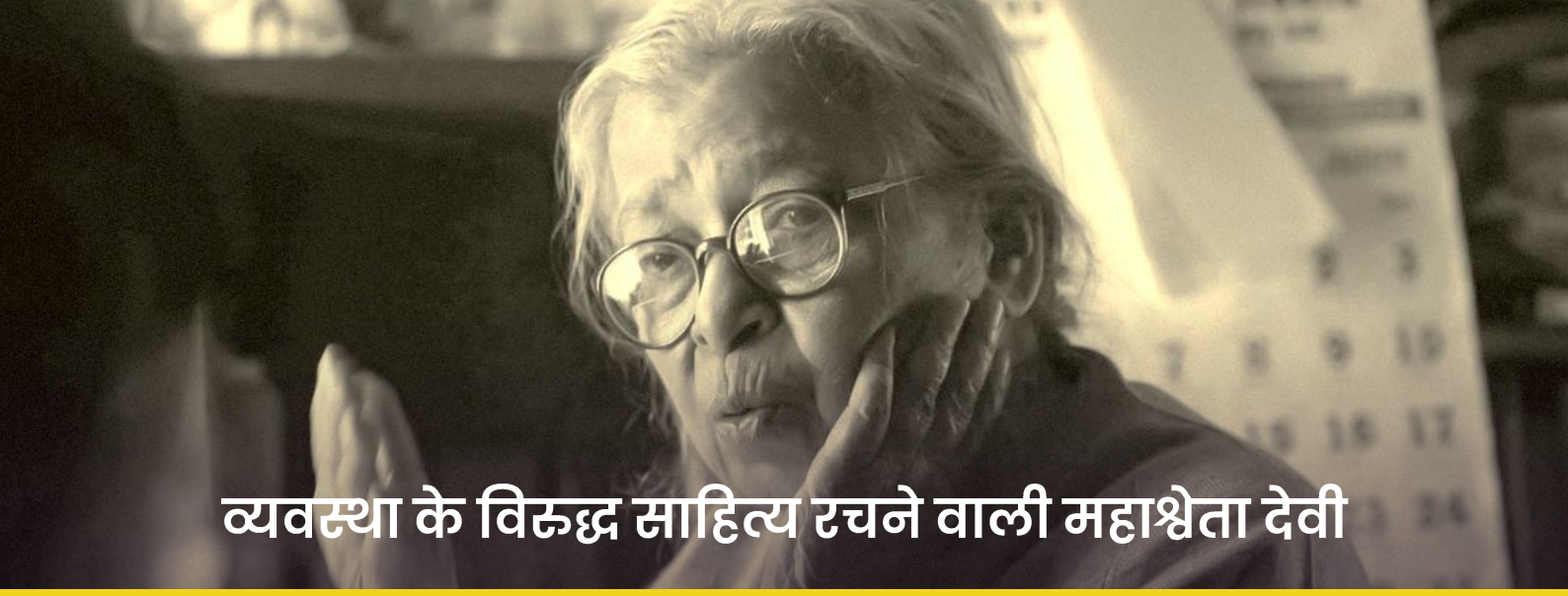

व्यवस्था के विरुद्ध साहित्य रचने वाली महाश्वेता देवी

महश्वेता देवी का नाम 20वीं सदी के उन साहित्यकारों में आता है, जिन्होंने अपने कलम के माध्यम से सड़ चुकी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध युद्ध छेड़ा था। महाश्वेता देवी का साहित्य समाज के वंचित और शोषित लोगों की आवाज़ है। उन्होंने परंपरागत रूप से चली आ रही शोषणतंत्र की बुनियाद को झिंझोड़ कर रख दिया।

महाश्वेता देवी ने स्त्री अस्मिता पर प्रबल रचनाएं की है। उनकी सबसे चर्चित कहानी "द्रौपदी" में द्रौपदी का पात्र एक ऐसी क्रांतिकारी और सशक्त महिला है जो शोषित और हाशिये पर होने से चुप नहीं बैठती। वह शोषणकारी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करती है और परंपरागत मान्यताओं को तोड़ती है। आश्चर्य नहीं कि क्यों रूढ़िवादियों ने इस कहानी पर इतना विवाद किया। पुरुषों की सत्ता को नकारती और उनके बनाए नियमों के विरुद्ध जाती स्त्री कैसे इस पितृसत्तात्मक समाज को स्वीकार होती।

स्वतंत्रता पूर्व जनजातीय नायकों को महाश्वेता देवी ने अपने साहित्य में विशेष स्थान दिया है। "चोट्टी मुंडा और उसका तीर" में उन्होंने हाशिये पर खड़े जनजातीय लोगों की जीवनगाथा लिखा है। उन्होंने इसका भी उल्लेख किया कि कैसे जनजातीय लोगों की लिपि न होने के कारण वे महत्वपूर्व घटनाओं को किवदंतियों और गीतों के रूप में याद रखते आए हैं। "जंगल के दावेदार" में उन्होंने बताया कि बिरसा की लड़ाई केवल स्वतंत्रता की नहीं थी बल्कि आदिवासी अस्मिता की भी थी।

स्वतंत्रता के पश्चात उपेक्षितों की जीवन दशा को भी महाश्वेता देवी ने विषय बनाया। झारखंड की पृष्ठभूमि पर आधारित "भूख" में उन्होंने स्वतंत्रोत्तर सर्वहारा वर्ग की दयनीय स्थिति और शोषणकारी व्यवस्था को दिखाया है। इसके अतिरिक्त अग्निगर्भ, मर्डरर की माँ, हजार चौरासी की माँ, मास्टर साहब आदि व्यवस्था की पोल खोलने वाली रचनाएं हैं।

महाश्वेता देवी ने कभी अपने उसूलों से समझौता नहीं किया। कबीर की तरह ही जो निंदनीय लगा उसकी निंदा की और जो प्रशंसनीय उसकी प्रशंसा। महाश्वेता देवी कोई निष्पक्षीय लेखिका नहीं थी। वह हमेशा शोषितों और वंचितों के पक्ष में लिखती रही। उनका दुख बयाँ करती रही। उनकी आवाज उठाती रही।

– रिशु सिंह (स्नातकोत्तर, सेमेस्टर 4)

"जिस दिन औरतों के श्रम का हिसाब होगा, इतिहास की सबसे बड़ी धोखाधड़ी पकड़ी जाएगी"

– रोज़ा लक्समबर्ग

ये ग़रीब मंच की औरतें

ये ग़रीब मंच की औरतें हैं
ये बहुत ही ख़ूबसूरती के साथ
हवा में लहराकर
हँसुए से लिख सकती हैं
ईमान की बात
एक साथी कहता है
ये कैथर कला की औरतें हैं
(इनकी बाजुओं से ही दुनिया की सूरत बदलेगी)

ये अभी-अभी जुलूस से लौटी हैं
इन्होंने डी०एम० का घेराव किया है
भू-माफ़ियाओं की साज़िशों के ख़िलाफ़
ये अब बैठी हैं विचार-गोष्ठी में
और पूरे ध्यान से सुन रही हैं वक्ताओं को
कविताओं को गुन रही हैं अपने अर्थ के साथ
इनमें से अधिकाँश पढ़ना भी नहीं जानती
लेकिन वे जानती हैं लड़ने के दाँव-पेंच

वे विचारों को माँज रही हैं
एक युवा उनसे सीखने की बात करता है
उनके जीवन अनुभवों को वास्तविक ग्रन्थ कहता है
उसकी बातों से उनकेरोम-रोम में
दौड़ती है बिजली की लहर
और उनकी सिकुड़ती चमड़ी में
चमक पैदा होती है समर्थन के शब्द सुनकर

ग़रीब मंच की औरतों में
ग़रीबी का रुदन नहीं है
कहीं नहीं है भिक्षा का भाव
उल्लास है उनकी भंगिमाओं में
वे हँसती हैं, बोलती हैं, पूछती हैं
उनकी सोच में नहीं है
बिकने का भाव और सुविधाओं की सेंध
वे पूरी ताक़त के साथ
सलाम की मुद्रा में अपनी मुट्ठियाँ उठा देती हैं ।

– अनुज लुगुन

“एक सशक्त और शिक्षित स्त्री सभ्य समाज का निर्माण कर सकती है। इसलिए तुम्हारा भी शिक्षा का अधिकार होना चहिए। कब तक तुम गुलामी की बेड़ियों में जकड़ी रहोगी। उठो और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करो।”

– सावित्रीबाई फूले

मछली के पंख

मैं बाज़ नहीं
मछली पैदा हुई
तैरने का बेमिसाल हुनर लेकर
हिक़ारती नज़रों ने कहा
मुझे नहीं आता उड़ना
मैं नहीं देखती आकाश
मेरी बेहतरी के लिए
मेरे फ़िनों पर बाँध दिए
पत्थर के बड़े
और नक़्क़ाशीदार पंख
मैं आकाश देखते हुए
पानी में ही दबोची गई
और भी आसानी से।

– कविता कादम्बरी

लोग औरत को फ़क़त

लोग औरत को फ़क़त जिस्म समझ लेते हैं
रूह भी होती है उस में ये कहाँ सोचते हैं

रूह क्या होती है इस से उन्हें मतलब ही नहीं
वो तो बस तन के तक़ाज़ों का कहा मानते हैं
रूह मर जाती है तो जिस्म है चलती हुई लाश
इस हक़ीक़त को समझते हैं न पहचानते हैं

कितनी सदियों से ये वहशत का चलन जारी है
कितनी सदियों से है क़ाएम ये गुनाहों का रिवाज
लोग औरत की हर इक चीख़ को नग़मा समझे
वो क़बीलों का ज़माना हो कि शहरों का रिवाज

जब्र से नस्ल बढ़े ज़ुल्म से तन मेल करें
ये अमल हम में है बे-इल्म परिंदों में नहीं
हम जो इंसानों की तहज़ीब लिए फिरते हैं
हम सा वहशी कोई जंगल के दरिंदों में नहीं

इक बुझी रूह लुटे जिस्म के ढाँचे में लिए
सोचती हूँ मैं कहाँ जा के मुक़द्दर फोड़ूँ
मैं न ज़िंदा हूँ कि मरने का सहारा ढूँडूँ
और न मुर्दा हूँ कि जीने के ग़मों से छूटूँ

कौन बतलाएगा मुझ को किसे जा कर पूछूँ
ज़िंदगी क़हर के साँचों में ढलेगी कब तक
कब तलक आँख न खोलेगा ज़माने का ज़मीर
ज़ुल्म और जब्र की ये रीत चलेगी कब तक

साहिर लुधियानवी

मर्दानगी

पहला नियम तो ये था कि औरत रहे औरत,
फिर औरतों को जन्म देने से बचे औरत;
जाने से पहले अक़्ल-ए-मर्द ने कहा ये भी,
मर्दों की ऐशगाह में ख़िदमत करे औरत।

इतनी अदा के साथ जो आए ज़मीन पर,
कैसे भला वो पाँव भी रखे ज़मीन पर;
बिस्तर पे हक़ उसी का था बिस्तर उसे मिला,
ख़ादिम ही जाके बाद में सोए ज़मीन पर।

इस तरह खेल सिर्फ़ ताक़तों का रह गया,
एहसास का होना था, हिकमतों का रह गया;
सबको जो चाहिए था वो मर्दों ने ले लिया,
सबसे जो बच गया, वो औरतों का रह गया।

यूँ मर्द ने जाना कि है मर्दानगी क्या शै,
छाती की नाप, जाँघिए का बाँकपन क्या है;
बाँहों की मछलियों को जब हुल्कारता चला,
पीछे से फूल फेंक के देवों ने कहा जै।

बाद इसके जो भी साँस ले सकता था, मर्द था
जो बीच सड़क मूतता हगता था, मर्द था;
घुटनों के बल जो रेंगता था मर्द था वो भी,
पीछे खड़ा जो पाँव मसलता था, मर्द था।

कच्छा पहन के छत पे टहलता था, मर्द था
जो बेहिसाब गालियाँ बकता था, मर्द था;
बोतल जिसे बिठा के खिलाती थी रात को,
पर औरतों को देख किलकता था, मर्द था।

जो रेप भी कर ले, वो मर्द और ज़ियादा,
फिर कहके बिफ़र ले, वो मर्द और ज़ियादा;
चलती गली में कूद के दुश्मन की बहन को,
बाँहों में जो भर ले वो मर्द और ज़ियादा।

मर्दानगी को थाम के बीमार चल पड़े,
बूढ़े-जवान, नाकिसो-लाचार चल पड़े;
मर्दानगी के बाँस पे ही टाँग के झंडे,
करके वतन की देख-रेख यार चल पड़े।

– आर. चेतनक्रांति

धन्यवाद